वन्दन-भक्त — अक्रूरजी

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ } श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्वन, ता० १ अक्टूबर, १९३५ { अंक १२ पूर्ण संख्या १०८

वेदोपदेश

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्ठये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

जैसे न्याय-वाक्यों से युक्त पण्डित के पास शिक्षा के लिये खड़े होते हैं, हे अश्विनी-द्वय, वैसे ही अन्य देवों में अनासक्त स्तोता लोग, शोभन स्तुति के साथ, अनुग्रह-प्राप्ति की आशा में, तुम्हारे रथके पास खड़े होते हैं। अश्विनी-द्वय, तुम लोग जिन उपायों के साथ यज्ञ-सम्पादन के लिये सुमति लोगों की रक्षा करते हो, उन उपायों के साथ आओ।

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिधेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

नेतृ-द्वय, तुम लोग स्वर्गीय-अमृत-लब्ध बल द्वारा तीनों भुवनों में रहने वाले मनुष्यों का शासन करने में समर्थ हो। जिन सब उपायों द्वारा तुमने प्रसव-रहित शत्रु की गौओं को दुग्धवती किया था, अश्विनी-द्वय, उन उपायों के साथ, आओ।

पुराण-गाथा

हिरण्यकशिपु वध।

[ले० श्रीस्वामी पूज्य भोले बाबा जी]

नारद-हे शौनक! दैत्यराज हिरण्यकशिपु उस अद्भुत ध्वनि को सुनकर चिकित हो कर इधर उधर देखने लगा परन्तु उसने उस भयानक शब्द के करने वाले प्राणी को कहीं भी न देखा, तब तो उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ कि शब्द तो हुआ परन्तु शब्द का करने वाला कोई दिखायी नहीं देता, इतने ही में खम्भे के मध्य में से निकलते हुए एक अद्भुत प्राणी को उसने देखा और उसको देख कर वह अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा:-

हिरण्यकशिपु-(मन में) ओ हो! यह कैसा अद्भुत प्राणी है! न तो यह नर है, न सिंह है, किन्तु इन दोनों से विचित्र ही है, क्या यह नृसिंह रूप है? ऐसा रूप तो मैंने कभी कहीं तीनों लोकों में नहीं देखा! पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग, इन सब में जा सका हूं और गया भी हूं, फिर भी ऐसा अद्भुत प्राणी मेरे देखने में नहीं आया! जैसे ऊपर के लोकों में मैंने ऐसा प्राणी नहीं देखा, इसी प्रकार पृथिवी के नीचे पातालादि लोकों में ऐसा प्राणी मेरी दृष्टि में नहीं आया! यह तो कोई विलक्षण ही प्राणी है! मेरे सामने ही खड़ा हुआ है, नृसिंह रूप है, अत्यन्त ही भयानक है! इसको देखने से ही मुझे भय लगता है, देव, असुर आदि किसी से भी मुझे भय नहीं लगता, क्योंकि सब से युद्ध कर चुका हूं और सब को जीत भी चुका हूं, सब को जीतने वाले मुझ को इससे भय लगता है, इससे प्रतीत होता है कि यह कोई अपूर्व प्राणी है! तपे हुए कांचन सुवर्ण के समान दमकते हुए इसके प्रचण्ड नेत्र हैं, जटाओं से और गले के रोमों से मुख बड़ा भयंकर दीखता है, डाढें कराल यानी भयंकर हैं, तलवार के समान चंचल और छुरे की धार के समान पैनी जिह्वा है, भ्रकुटी टेढी है, मुख भयानक है, कठिन खड़े हुए कान हैं, पर्वत की गुफा के समान फटा हुआ मुख है, और जौवड़ों के फाड़ने से अत्यन्त भीषण हो गया है, नासिका लम्बी है, शरीर स्वर्ग को छू रहा है, छोटा और मोटा गला है, वक्ष स्थल विशाल है, उदर यानी पेट छोटा है, चन्द्रमा की श्वेत किरणों के समान रोंगटों से व्याप्त भुजायें सर्वत्र फैली हुई हैं और इसके नख ही हथियार हैं! चक्रादि अपने और वज्र आदि दूसरों के सभी मुख्य हथियारों से इसने दैत्य और दानवों को भगा दिया है! ऐसा अनुमान होता है कि महामायावी हरि ने इसी रूप से मेरे मारने का उपाय किया है परन्तु इस उद्यम से क्या हो सका है? युद्ध किये बिना मैं नहीं रह सका! अवश्य

युद्ध करूंगा ! यदि जीत गया, तो लोक में कीर्ति पाऊंगा और मर गया तो सीधा वैकुण्ठ में जाऊंगा ! ब्रह्मा के बनाये हुए किसी प्राणी से तो मैं मर ही नहीं सका। यदि मरूंगा, तो भगवान के हाथ से ही मरूंगा ! युद्ध में मरने वाले स्वर्ग को जाते हैं और मैं तो भगवान के हाथ से मरने से और संमुख मरने से स्वर्ग को नहीं जाऊंगा किन्तु वैकुण्ठ को ही जाऊंगा ! कोई कहे कि वैकुण्ठ तो भगवान की प्रेमा भक्ति करने से ही प्राप्त हो सका है, तो इष्ट से मन लगाने और प्राण देने की क्या आवश्यकता है, तो यह शंका भीरु कायर पुरुषों की है प्रेमा भक्ति करने के लिये बहुत समय चाहिये और बहुत समय में भी उसका फल प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो, इस बात का निश्चय नहीं है, क्योंकि प्रेमा भक्ति करने में बहुत विघ्न आते हैं और वह है भी कठिन, अहिंसा आदि यमों का पालन करना पड़ता है, चिरकाल में इनकी सिद्धि होती है, नियमों का पालन यमों के पालन से भी कठिन है, बाहर भीतर पवित्र रहना सहज काम नहीं है, सन्तोष तो बिना संन्यास यानी सर्वस्व त्याग के सिद्ध ही नहीं हो सका, तप में शरीर सुखाना पड़ता है इन्द्रियों का दमन करना पड़ता है, विषयासक्त पुरुष से तप नहीं हो सका। विचार रूप तप का तो विषयासक्त पुरुष अधिकारी ही नहीं है। स्वाध्याय की सिद्धि तो असंभव सी ही है, क्योंकि शब्द शास्त्र अथाह और अपार है, आज तक उसकी किसी को थाह ही नहीं मिली। ईश्वर प्रणिधान तो सब से ही कठिन है, मन के स्थिर हुए बिना हो ही नहीं सका, मन का स्थिर होना बड़ी टेढ़ी खीर है। विद्वानों का वचन है कि समुद्र को पी जाना और वायु को रोक देना हो सका है परन्तु इन दोनों से भी मन का रोकना बहुत ही दुःसाध्य है, इसलिये यम नियम मैं नहीं कर सका। आसन मैं जमा सका हूं, परन्तु मात्र आसन से सिद्धि नहीं हो सकी, अन्य साधन भी करने पड़ेंगे। प्रत्याहार मेरे वश का नहीं है, क्योंकि विषयासक्त इन्द्रियों को जीत नहीं सका और मैं विषयासक्त हूं। जब प्रत्याहार ही मुझ से नहीं हो सका, तो अन्य धारणा, ध्यान, समाधि तो हो ही कैसे सके हैं ? नहीं हो सके। यदि हो भी जांय, तो बहुत समय चाहिये, इसलिये अष्टांग योग करके मैं मुक्त होना नहीं चाहता।

कोई कहे कि अष्टांग योग न सही, नवधा भक्ति करने में तो कुछ कठिनाई नहीं है, तो ऐसा नहीं है, सतोगुणी प्रकृति वाले मनुष्य ही नवधा भक्ति का अधिकारी है, तामसी प्रकृति वाले का उसमें अधिकार नहीं है, मैं तामसी प्रकृति वाला हूं, असुर जाति में मेरा जन्म हुआ है, तब नवधा भक्ति कैसे कर सका हूं ? नहीं कर सका ! कर भी सका हूं, तो वर्षों तक श्रवण करना पड़ेगा श्रवण कराने वाले सन्त महात्माओं की खोज करनी पड़ेगी, सन्त महात्माओं का मिलना, कठिन है, मिल भी गये, तो वे मुझे श्रवण ही नहीं करावेंगे, मेरी आसुरी प्रकृति देख कर मुझे पास ही नहीं बैठा-वेंगे ! बैठा भी लिया, तो भी मुझे उनकी सेवा करनी पड़ेगी, क्योंकि बिना सेवा के कुछ मिल ही नहीं सका, तब भगवान के गुणों को श्रवण तो मिलही कैसे सका है ? नहीं मिल सका, किसी की सेवा मुझ से हो भी नहीं सकी, क्योंकि मैं तीनों लोकों का अधिपति हूं। कोई थोड़ा भी श्रीमान् अथवा ऐश्वर्य वाला होता है, उसे अकिंचन सन्तों के सामने नीचे बैठने में लज्जा मालूम होती है, तब तीनों लोकों का अधिपति एक नंगे, मैले कुचैले मनुष्य के सामने नम्र हो कर नीचे आसन पर कैसे बैठ सका हूं ? नहीं बैठ सका ! इसलिये मुझ

से श्रवण नहीं हो सका ! जब मैं प्रथम साधन श्रवण ही नहीं कर सका तो दूसरा साधन कीर्तन कैसे कर सकूंगा ? नहीं कर सकूंगा ! तीसरा साधन स्मरण है, यह तो मैं करता ही हूं, भेद इतना है कि दूसरे प्रेम से स्मरण करते हैं और मैं द्वेष से करता हूं। नारद आदि भक्तों से मैंने सुना है कि जितनी जल्दी और जैसा भगवान् में द्वेष से मन लगता है, उतनी जल्दी और वैसा प्रेम से नहीं लगता, इसमें कीट भ्रमर का दृष्टान्त है कि भ्रमर का द्वेष से ध्यान करने से कीट शीघ्र ही भ्रमर हो जाता है, इसलिये प्रेम से विष्णु का ध्यान मुझे करना उचित नहीं है, द्वेष से ही करना चाहिये। चौथा पाद सेवन, पांचवां अर्चन, छठा वन्दन, सातवां दास्य, आठवां सख्य और नवां आत्म समर्पण है। इनमें से पहिले पांच तो मैं कर नहीं सका, क्योंकि तामसी प्रकृति वाला हूं, पिछला आत्म समर्पण कर सका हूं, आत्मा नाम देह का, स्वभाव का अथवा स्वरूप का है, इन तीनों का समर्पण मैं इनके साथ युद्ध करके भी कर सका हूं यानी इन तीनों का अभिमान छोड़ कर मैं इनसे युद्ध करूंगा, यदि जीत गया तब तो यह भगवान् हैं ही नहीं, यदि मारा गया, तो सहज में ही स्वरूप से ही तीनों का समर्पण हो जायगा, इसलिये मुझे इनसे युद्ध ही करना चाहिये !

एक दाता के यहां से सब को पका हुआ भोजन मिलता था। एक सन्त ने जब वहां भोजन मांगा, तो भंडारी उनको आटा दाल आदि कच्चा सीधा देने लगा, तब सन्त कहने लगे:-

सन्त-भाई ! जब दाता की आज्ञा है कि पका हुवा सामान सबको मिलना चाहिये, तब तू मुझे कच्चा सीधा क्यों देता है ? नया चूल्हा मुझे बनाना पड़ेगा। आग सिलगानी पड़ेगी, गीला ईंधन हुआ तो धुम से आंखें फूट जांयगी ! मुख लाल हो जायगा, सूखा ईंधन हुआ, तो भी आग के सामने तो बैठना पड़ेगा ! दाल के लिये बटलोई ढूंढनी पड़ेगी, बटलोई भी मिल गयी, तो आधा घण्टे में दाल गलेगी, पुरानी दाल हुई, तो अच्छी तरह गलेगी भी नहीं ! कम आंच हुई, तो रोटी कच्ची रह जायगी, अधिक हुई, तो रोटी जल जायगी ! रुचि के अनुसार रसोई नहीं बनेगी ! बन भी गयी तो यदि कोई कुत्ता आ गया, तो बनी बनाई रसोई बिगड़ जायगी, यदि बन्दर आ गया, तो रोटियां उठा ही ले जायगा मैं भूखा ही रह जाऊंगा, इसलिये मैं रसोई बनाने की झंझट में नहीं पड़ता, मुझे तो पकी पकाई रसोई दे दे ! ऐसा करने से दाता का अधिक पुण्य होगा और मुझे भी न तो चूल्हा फूंकना ही पड़ेगा और न बर्तन मांजने पड़ेंगे !

जैसे पके हुए भोजन को छोड़ कर सीधा लेकर पकाने की झंझट में पड़ना मूर्खता है ! इसी प्रकार युद्ध में शिर न देना और नवधा भक्ति के साधनों में लगकर वृथा काल बिताना मूर्खता है। जहां शिर दिया कि भगवान् के पार्षदों में शिरोमणि हुआ ! ऐसी सहज में ही मिलने वाली परम गति छोड़ कर व्यर्थ क्यों श्रम उठाऊं ! सात्विकी स्वभाव वाले साधुओं की भक्ति नवधा अथवा प्रेमा तामसी स्वभाव वाले असुरों की तो सेरंभा यानी द्वेष की भक्ति होती है, मेरा छोटा भाई हिरण्याक्ष भी ऐसा हो कर चुका है ! पृथिवी के उद्धार के समय वाराह रूप धारी विष्णु भगवान् के उसने छक्के छुड़ा दिये और अपने जीते जी पृथिवी ले जाने न दी ! संमुख युद्ध कर के अपने प्राण देदिये, तब पृथिवी रसातल से ले जाने दी ! नारदादि भक्त अब भी उसकी कीर्ति गाते हुए इस प्रकार कहा करते हैं:-

नारदादि-हिरण्याक्ष धन्य है, इसकी सी मुक्ति योगी भी नहीं पाते ! योगी तो भगवान का ध्यान करके तन्मय होकर मुक्ति पाते हैं प्रत्यक्ष भगवान का दर्शन नहीं करते। इसने तो गरुड़-ध्वज भगवान के सामने खड़े होकर मुक्ति पायी है। तब इससे धन्य दूसरा कौन होगा। जिसके लिये निर्गुण परमेश्वर को भी सगुण बनना पड़ा और अक्रिय होकर भी क्रिया करनी पड़ी, सम-दर्शी होकर भी युद्ध करना पड़ा, युद्ध करके भी अपने को उन्होंने वीर नहीं माना क्योंकि बड़ी कठिनाई से उसको मार सके।

मुझे भी युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये और पराक्रम दिखाना चाहिये। विद्वानों का कथन है कि जो मूढ़ पुरुष देह को आत्मा मान कर देह के नाश से अपना नाश मानता है, वह बारम्बार जन्मता और मरता रहता है और जो धीर पुरुष देह से आत्मा को भिन्न जानता है, वह परम पद पाता है। देह जड़ है, दृश्य है और अनित्य है, आत्मा चेतन है, द्रष्टा है और नित्य है आत्मा की क्या हानि है ? कुछ भी हानि नहीं है, उलटा लाभ है, तीनों देह रोग से युक्त हैं। स्थूल देह में वात, पित्त और कफ के कोप से होने वाले ज्वर आदि अनेक रोग हैं, सूक्ष्म देह में ईर्षा, चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ आदि अनेक रोग हैं और कारण देह दोनों देहों का बीज होने से रोग रूप ही है, इसी में समस्त रोग वास करते हैं, इस-लिये इन तीनों की अहंता और देह के सम्बन्धियों की ममता मुझे इस देह का त्याग कर देना चाहिये। विद्वान तो सात्विकी देह में भी अहंता नहीं करते, तब मुझे तामस देह में अहंता क्यों करनी चाहिये। नहीं करनी चाहिये। कायर पुरुष ही शत्रु को देख कर पीठ दिखा कर भागते हैं, शूर तो अपने प्राण देकर अथवा दूसरे के प्राण लेकर ही रण में से हटते हैं। इस समय युद्ध में जीतने से मैं मरना ही श्रेष्ठ समझता हूं, क्योंकि देह तो मरा मराया ही है, एक दिन यह अवश्य ही अपने को छोड़ देगा, इसलिये शूरता दिखाकर इस नश्वर देह को त्याग देना चाहिये। भगवान् के हाथ से मरना थोड़े पुण्य का फल नहीं है, सिवाय भगवान् के दूसरा कोई मुझे मार भी नहीं सकता।

नारद-हे शौनक ! कहने में तो बहुत समय लगा है, दैत्यराज हिरण्यकशिपु उपरोक्त और अन्य भी बहुत कुछ विचार करके गदा हाथ में लेकर जैसे पतंगा अग्नि में जल जाऊंगा, ऐसा न जान कर अग्नि में अपने प्राण होमने को दौड़ता है, इसी प्रकार नृसिंह भगवान् के ऊपर नाद करता हुआ दौड़ा। जो जगदीश्वर काल रूप से चराचर जगत् का भोजन कर जाता है और जो ईश्वर अपने तेज से ही सृष्टिकाल में प्रलय के अन्धकार को पी जाता है, उसके तेज में महा असुर छुप गया परन्तु फिर भी नृसिंह के ऊपर गदा तो चला ही दी। गदाधारी भगवान् ने जैसे गरुड़ महासर्प को पकड़ले, इसी प्रकार गदा सहित दैत्यराज को पकड़ लिया, परन्तु जैसे गरुड़ सर्प के साथ क्रीड़ा करता हो, इसी प्रकार असुरराज भगवान के हाथ से छुट गया। भगवान भी कौतुकी हैं, उन्होंने फिर उसे पकड़ लिया, फिर भी वह छुट गया। बारम्बार भगवान पकड़ले और दैत्यराज छुट जाय। ऐसा देख कर आकाश में युद्ध का तमाशा देखने के लिये विमानों में बैठे हुए सब दिग्पाल घबरा गये और अपने में अनेक प्रकार की तर्कनायें करने लगे।

भगवान् के वीर्य को जानने वाले तो कहें कि भगवान् खेल कर रहे हैं, अन्त में उन्हीं की जीत होगी और जो भगवान् की सामर्थ्य को नहीं जानते थे, वे कहें कि दैत्यराज बड़ा बली है, ब्रह्मा से वरदान पाया हुआ है, इसका मरना कठिन है, संभव है कि नहीं मरे क्योंकि जो भगवान् अपने भ्रकुटी विलास से चराचर जगत् का प्रलय कर देते हैं, उनके हाथ से क्यों छूट जाता है, छुट जाने से बारम्बार छुट जाने से हमको सन्देह होता है कि शायद न मरे। देवताओं को ऐसी तर्कना करते हुए देख कर भगवान् ने खंगधारी दैत्यराज को बड़ा भारी अट्टहास करके पकड़ लिया और जिस दैत्य की त्वचा-वज्र से भी नहीं कटी थी, उसके पेट को सभा के द्वार पर, संध्या के समय, अपनी जंघाओं पर रख कर लीला से ही चीर डाला। आकाश से देवता पुष्प वर्षा ने लगे, गंधर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं! सिद्ध चारण आदि स्तुति करने लगे।

पाठक! अन्य दैत्यों को मारना, ब्रह्मा आदिकों की स्तुति करना आदि नारद जी जो वर्णन करेंगे, उसको आगे के निबंध में आपके कर्णगोचर करेंगे! यहां तो मात्र इतना ही कहना है।

कृ—लीलायें जगदीश की, सहजन समझी जांय।
हरि भक्तों के चरित भी, समझ मक ही पांय॥
समझ मक ही पांय, ब्रह्म निर्गुण है कैसे।
निर्गुण होवे सगुण, करे लीलायें जैसे॥
भोला! वे ही धन्य, कृष्ण लीलायें गायें।
तू भी जप हरिनाम, नित्य गा हरि लीलायें॥

कामना

[ले० 'मान' जबलपुरी

काम नाहिं धाम नाहि बाम औ आराम नाहिं,
रंच रुची रही नाहि राज काज साजना।
साज नाहि बाज नाहि लाज नाहि काज नाहि,
मुक्ति हूं की युक्ति 'मान' भक्ति नाहि भावना॥
भाव नाहि हाव नाहि चाव नाहि दाव नाहि,
त्याग अनुराग नाहि राग रंग राहना।
राहना सराहना की चाहना है चाहना की,
कान्ह एक कामना है कान्ह एक कामना॥

आवागमन

[यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव नरसिंह पुर]

आवागमन आने जाने को कहते हैं जिसका मुख्य अर्थ जन्म लेना और मरना है। देखिये इस विषय में कबीर साहिब क्या कहते हैं ? वे कहते हैं:-

हम न मरब, मरि है संसारा।
हमको मिला 'जियावन हारा' ॥
अब न मरूं मरने मन माना।
मरे सोई जो 'नाम' न जाना ॥
\+ + +
साकित मरें सन्तजन जीवें।
भरि भरि 'नाम' रसायन पीवें ॥
'हरी मरें तो हमहूं मरें।
'हरि' न मरें तो हम काहे मरें ॥
कहें कबीर मन मनहिं मिलावा।
अमर भये सुख सागर पावा ॥

अर्थात् परमेश्वर को भूल जाना ही मृत्यु है।

'मर मिटे जो जिन्दगी में वे कभी मरते नहीं।'

भावार्थ

जो जीते जी भगवान् को जान लेते हैं वे कभी नहीं मरते।

आवागमन शरीर का होता है। आत्मा का नहीं। आत्मा तो अमर है। वह न कहीं जाता है न आता है, न बनता है न बिगड़ता है। सदा एक रस रहता है। शरीर से उसका कोई संबंध नहीं है। वह तो उसका भोग स्थान है:-

'तस्य भोगायतनं शरीरम्।'

जिस प्रकार चमगीदड़ को दिन में अन्धकार और रात्रि में दिखाई देता है उसी प्रकार अज्ञानियों को जीवात्मा में जन्म-मरण तथा पुण्य और पाप दिखाई देते हैं। यही तो नास्तिकता है। इसी को माया अथवा अविद्या कहते हैं। यही भ्रम है। भ्रम ही से संसार बनता है।-

'भ्रमहिं सब घट रह्यो समाई।
भ्रम छांडि कतहुं नहिं जाई ॥'

और भी:-

'माया ते मन ऊपजे मन ते दस अवतार।
ब्रह्मा विष्णु धोखे गये भ्रम पड़ा संसार ॥'

शरीर विपरिणामी है। वह सदा बदलता रहता है। उसकी चार अवस्थाएँ हैं। वृद्धि, यौवन, सम्पूर्णता और किञ्चित् परिहाणि।

'चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धि यौवनं,
सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति।

सोलहवें वर्ष पर्य्यन्त जो कुछ खाया पिया अथवा अन्य प्रकार से शरीर में पहुंचाया जाता है वह अधिक होता है और उसकी अपेक्षा जो कुछ शरीर से निकलता है वह कम होता है। इस प्रकार आय अधिक और व्यय कम होने से शरीर की वृद्धि होती है। सत्रहवें वर्ष से २४ वें वर्ष तक

आय और व्यय बराबर रहता है, नवीन अणु भी पुराने अणुओं के साथ मिल कर एक हो जाते हैं और शरीर भी पुष्ट होता है। यह यौवन काल है। पच्चीसवें वर्ष से चालीसवें वर्ष तक आय, व्यय और पुष्टि का परिमाण बराबर रहता है इससे फल भी वैसा ही होता है। इसे सम्पूर्णता कहते है। चालीसवें वर्ष के उपरान्त आयन्यून और व्यय अधिक होने लगता है, रस रक्त आदि धातु भी घटने लगती हैं और बुढ़ापा आ जाता है जो मृत्यु का पूर्व रूप है और किंचितपरिहाणि कहलाता है। इसके आते ही मृत्यु तक पहुंचने में देर नहीं लगती।

'जीवन पूरा हो गया अटका अन्तिम काल।
पकड़ी चोटी मृत्यु ने अबन बचोगे लाल॥

और भीः-

'युवा जरा बालापन बीत्यो चौथी अवस्था आये।
जस मुसवा को तकै बिलैया, तस यम घात लगावे॥'

आवागमन का चक्र बड़ा भयंकर है। बिना आत्मज्ञान के उससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं वरन असंभव है।

'पण्डित ! शोधि कहहु समुझाई, जातें आवागवन नसाई।
अर्थ, धर्म और काम मोक्ष फल कौन दिशा बसै भाई॥
उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम स्वर्ग पाताल के माहें।
बिन गोपाल ठौर नहिं कतहूं, नर्क जात धौं काहे॥
अनजाने को नर्क स्वर्ग है, हरि जाने को नाहीं।
जेहि डर सों सब लोग डरत है सो डर हमरे नाहीं॥
पाप पुन्य की शंका नाहीं, स्वर्ग नर्क नहिं जाहीं।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो जहां पद तहां समाहीं॥

जीवात्मा ज्योति है। वही सबको प्रकाशित करता, देखता, भोगता और जानता है।

'सर्वज्ञः सर्वानुभावः।'

यही शरीर रूपी राष्ट्र का स्वामी है। जब वह स्थूल शरीर में काम करता है तब उसे 'जीव' अथवा 'राजा' जब वह सूक्ष्म शरीर में काम करता है तब उसे 'ईश्वर' अथवा 'महाराजा', जब वह कारण शरीर में काम करता है तब उसे 'परमेश्वर' अथवा 'सम्राट' और जब वह महा कारण शरीर में काम करता है तब उसे 'विराट' अथवा 'ब्रह्म' कहते हैं। इस प्रकार हमारा शरीर एक राष्ट्र है। जीवात्मा उस राष्ट्र का सम्राट् बुद्धि-मंत्रि मंडल, मन-सभा समिति, ज्ञानेन्द्रियें-ब्राह्मणदल और कर्मेन्द्रियें-क्षत्रिय संघ है। इनमें से ब्राह्मण और क्षत्रिय संघ वेतन भोगी है। जो कुछ हम खाते पीते हैं उसका रस बन कर इन्द्रियों को पहुंचता है यही उनका वेतन है। परन्तु उनकी सेवाएँ स्वार्थ से खाली नहीं होती। वे काम तो थोड़ा करते हैं परन्तु अपने आराम का अधिक ख्याल रखते हैं। देखिये ! नाक सुगन्ध चाहती है परन्तु दुर्गन्ध से परहेज करती है, आखें सुन्दर आकृति चाहती है परन्तु बुरी आकृतियों से घृणा करती हैं, कान मधुर स्वर चाहते हैं परन्तु कर्कश स्वर आते ही दरवाजे बन्द कर लेते हैं, जिह्वा स्वादिष्ट पदार्थ चाहती है वैसे पदार्थ न मिलने से हठ पकड़ लेती है, चर्मेन्द्रिये कोमल पदार्थ चाहती है वैसे पदार्थों का स्पर्श न मिलने से हड़ताल कर देती हैं इस प्रकार ब्राह्मण दल बड़ा मन मौजी और ऐश-व-आराम तलब है। थोड़ा सा भी कष्ट सहने को तैय्यार नहीं होता उसे चाहे जितनी दक्षिणा दो वह अपनी आदत से बाज़ नहीं आता। सम्राट महोदय भी उसकी दक्षिणा बढ़ाते २ तंग हो जाते हैं परन्तु वह अपनी धुन में ही मस्त रहता है। क्षत्रियसंघ का यही हाल है जब तक खुश रहता है तब तक काम करता है तनकसी भी विरुद्ध बात देखते ही नाक मोह सिकोड़ने लगता

है और काम बन्द कर देता है। इन भंगियों की हड़ताल के मारे राष्ट्र पर आपत्ति आजाती है। अतः ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों दलों के सेवक महा अप स्वार्थी होते हैं। आधा समय तो उनका सोने में ही चला जाता है शेष आधे समय में वे अपने आराम का अधिक ख्याल रखते हैं। और आराम में विघ्न पड़ते ही नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं यहां तक कि काम करना भी बन्द कर देते हैं। इनमें जाति भेद भी बड़ा है एक कार्य कर्त्ता दूसरे कार्य कर्त्ता का स्थान ग्रहण करने और उसका काम सम्हालने को राजी नहीं होता। वह तो अपने जाति भेदक बन्धनों में ही पड़ा रहना चाहता है। ऐसे आप स्वार्थी वेतन भोगी कार्य कर्त्ताओं के भरोसे राष्ट्र का काम छोड़ना और उसके कल्याण की आशा करना बड़ी मूर्खता है।

इनके अतिरिक्त श्वास और उच्छ्वास दो अवैतनिक सेवक और हैं। वे राष्ट्र के बड़े ही शुभ चिंतक हैं। जिस समय ब्राह्मण और क्षत्रिय दलके सेवक निद्रा में मग्न होकर काम बंद कर देते हैं उस समय भी ये महावीर जागते और काम करते रहते हैं।

स प्रतापः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जागृतो।
अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥

जब उक्त सातों वीर निद्रा में लीन होजाते हैं तब भी उस क्षेत्र में कभी न सोने वाले दो देव जागते रहते हैं।

इन दोनों महावीरों के जिन्हें प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान। इनके अतिरिक्त पांच उपप्राण और भी हैं और वे यह हैं नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। ये दसों महावीर अहर्निश राष्ट्र की सेवा किया करते हैं। भोजन मिले अथवा न मिले, सुख होवे अथवा दुख, संपत्ति मिले अथवा आपत्ति आवे उन्हें परवाह नहीं। उन्हें न सुगन्ध से प्रेम न दुर्गन्ध से घृणा, न स्वरूपता से प्रीति न कुरूपता से बैर, न स्वादिष्ट पदार्थों की रुचि, न अस्वादिष्ट पदार्थों की अरुचि, न मधुर शब्दों से हर्ष न कर्कश शब्दों से ग्लानि, न मृदु स्पर्श से प्रसन्नता और न तीक्ष्ण स्पर्श से शोक वे सबही दशाओं में खुश रहकर काम किया करते हैं। उनकी एक निष्ठ सेवा से राष्ट्र का काम बखूबी चलता और जीवात्मा को सम्राट् लेने का आनन्द प्राप्त होता है।

भक्ति के प्रिय पाठको! प्राणों की कार्य-कुशलता देखकर, उनका प्रभाव जानकर, और उनका महत्व समझ कर भी आप उनका यथोचित सत्कार नहीं करते यह तो बड़ी हठ धर्मी है। यह कहां का न्याय है कि जो रात दिन आपकी सेवा करे उसकी तो आप सुध भी न लेवें और जो विलासता में मग्न रहें और काम भी न करें उनका आप सदैव ध्यान रक्खें और सत्कार ही नहीं वरन लाड़ प्यार भी करें! यह तो बड़ी खराब बात है। नीतिकारों ने कहा भी है:-

लालने बहवो दोषाः, ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रं च, शिष्यं च ताडयेन्नतु लालयेत ॥

लाड़न ते बहु दुःख हैं, ताड़न ते सुख जान।
शिष्य पुत्र नहिं लाड़िये, लाड़ करें ते हानि ॥

और भी:-

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यः।
तद्वदेव महेशस्य नियन्तुर्गुण दोषयोः ॥

अर्थात्:-ताड़ना से ममता और भी विकसित होती है।

और भीः—

नीति प्रसंगः प्रमदासु कार्या, नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम्।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः, क्रीडन्ति काकैरिव लून पक्षैः॥

भावार्थ

स्त्रियों को अधिक मुंह न लगावे और उनका बल बढ़ने न देवे। क्योंकि अति आसक्त हुये पुरुषों से वे पंख नुचे हुये कव्वों के समान खेलती हैं। इसलिये अधिक नहीं तो सांझ सवेरे नियम पूर्वक विधियुक्त प्राणायाम किया कीजिये और प्राणों के पास स्वच्छ और ताजी वायु पहुंचाकर उनका सत्कार कीजिये इस प्रकार दीर्घायु प्राप्तकर जीवन का आनन्द लूटिये। लेखक का तो यह नियम है कि वह नदी तट अथवा खुले मैदान में जाकर बैठजाता है और आनन्द में मग्न होकर ओम्! ओम्! की रट लगादेता है। इस प्रकार घंटा आध घंटा तक लगातार जप करने से शरीर के संपूर्ण परिमाणु हिलजाते हैं। दूषित वायु निकल जाती है और ताजी और स्वच्छ वायु भीतर पहुंच कर प्राणों का सत्कार करती है। भजन भी खूब होता है। जिससे भगवान की तटस्थता प्राप्त होती है। और बड़ा ही आनन्द आता है।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
योयस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरगः॥

भावार्थ

जो जिसके मनमें रहता है वह दूर भी रहता हो तो भी दूर नहीं है और जो जिसके हृदय में नहीं रहता वह समीप भी रहता हो तो भी दूर ही है।

अपूर्ण

विजये

(कुमारी "शान्ति" देवी भार्गव हिन्दी प्रभाकर)

विजये बाला किस ओर रही?
चिर-परिचित-पथ भूली भटकी, कि बनी महमान किसी घट की।
विस्मृति की संकरी गलियों में कबसे आलोक खोज रही॥
विजये बाला किस ओर रही?
सुख शान्ति बनी बंशीवट की, या किसी हग-प्रांगन में अटकी।
सूख चली आशा कलिकाएं विजये! जो कुछ रही सही॥
विजये बाला किस ओर रही?

गायत्री जप प्रकार

गायत्र्याः जपप्रकार महायोगी याज्ञवल्क्यः

ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
गायत्रीं प्रणवश्चान्ते, जपो ह्येष उदाहृतः॥

तेन आद्यन्तयोः प्रणवो जप्यः।

प्रथम ओंकार का उच्चारण करे, फिर भूर्भुवः स्वः का। गायत्री के अन्त में प्रणव ओंकार लगावे। यह जपका लक्षण है। ऐसा ही मनु में भी लिखा है:-

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।

वेद मन्त्र के आदि अन्त में ओंकार का उच्चारण करना चाहिये।

मम हृदय मध्ये बाह्ये च सूर्य मण्डल मध्ये वर्तमान तेजसा एकीभूतं परब्रह्म स्वरूपं ज्योतिरहं इति चिन्तयन् जपं कुर्यात्।

मेरे हृदय के बीच में जो जीवात्मा है और बाहर जो आदित्य के मध्य में जो प्रकाशमान पुरुष है उसके साथ में एकीभूत हुवा जो परब्रह्म का स्वरूप है वह ज्योति स्वरूप परब्रह्म मैं हूं ऐसा चिन्तन करता हुवा जप करे। ओंकार चाहे एक लगावे, चाहे दो लगावे और चाहे तीन लगावे सबमें कल्याण ही कल्याण है। दोष किसी में नहीं पुण्य ही पुण्य है। यह सब जप करने वाले की रुचि पर है। गायत्री का जप ज्ञान का उदय करता है मोक्ष दायक है, बुद्धि दायक है, पापों का नाशक है। इसमें तर्पण, आह्वान, विसर्जन आदि का जो अङ्गंग लगाया गया है वह किसी अन्य सकाम कर्म के लिये है। चारों वेदों में गायत्री समान रीति से आई है। वहां कोई उपाधि नहीं है, पूर्व से ब्राह्मण लोग इस गायत्री को सबसे बड़ा मन्त्र मानते रहे हैं अब कुछ दिन से स्वार्थ आजाने के कारण जो सबसे अच्छी वस्तु समझी वह दूसरे को देना न चाहा अपने ही लिये रखना चाहा। इस वास्ते आह्वान विसर्जन, वसिष्ठ का शाप, ब्रह्मा का शाप, वरुण विश्वामित्र का शाप लगा दिया। इन चारों के शाप मोचन मन्त्र, चौबीस मुद्रा, तर्पण, कवच इत्यादि उपाधि लगादी। न तो बारह मन तेल हो न नथिया नाचे। भोले भाले जीवों ने समझा कि ऐसे अङ्गंग में क्यों पड़ें सीधा राम नाम जपें। उनकी भी यही मनशा थी कि गायत्री और कोई न जपें हम ही जपें। ऐसे विचार से तो पाप होता है। केवल ओंकार, व्याहृति और त्रिपदा गायत्री मिला करके जपने से पुण्य ही पुण्य होता है। और सब अङ्गंग त्याग दें। इसी के जपने से पाप नष्ट होते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रातःकाल खड़े होकर सूर्य मण्डल को देखता हुवा यह खयाल करे कि यह मैं हूं। चाहे बैठ करके, चाहे चलता फिरता चाहे सोता, चाहे किसी भी हालत में हो सूर्य आदि सारे विश्व को

सत्ता स्फूर्ति, ज्ञान, प्रकाश और आनन्द के देने वाला जो परमात्मा है वह मैं हूं ऐसा येन केन प्रकार से ब्रह्मात्मैक्य रूप से चिन्तन करे। व्यास जी ने भी कहा है :-

न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह।
सोऽहमस्मीति उपासीत विधिना येन केन चित् ॥

यही गायत्री का अर्थ है कि हम उस परमात्मा का अभेद रूप से ध्यान करें जो हमारी बुद्धियों को ब्रह्मात्मैक्य रूप ज्ञान के लिये प्रेरणा करे वा करता है। जो तेज पुञ्ज प्रकाश स्वरूप आनन्द स्वरूप है, ज्ञान और आनन्द देने वाला है, जो सर्व श्रेष्ठ और सबसे उपासना करने योग्य है, सब के उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला, प्रेरणा करने वाला, पवित्र करने वाला है और अनन्त अपार है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

सच्चिदानन्द स्वरूप ऐसा जो परमात्मा है वही मैं हूं। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि मैं नहीं हूं। यह सब भ्रान्ति है।

"सर्वोऽहमस्मीति उपासीत"

सब कुछ मैं हूं, मेरे सिवाय कुछ नहीं, जैसा यह उपनिषद् का मन्त्र है:-

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः।
केवलाखण्ड बोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥

गायत्री में कहे भगवान् के नौ नामों से स्तुति करे कि हे परमात्मा! तू ऐसा है, तू ऐसा है, धीमहि से अभेद रूप से ध्यान करे कि नौ नामों में कहा हुआ जो परमात्मा है वह और मैं एक हूं। परमात्मा हमको ऐसा ही दृढ़ निश्चय देवे यह प्रार्थना है। यही इस मन्त्र की सबसे उत्तम जपने की विधि है। इससे सब पाप नष्ट होजाते हैं और कोई दोष लगता नहीं। पाप में कभी मन जाता नहीं और सम्यक् ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। तब जीव कृत कृत्य होकर मुक्ति को प्राप्त होता है। इसको पूर्वापर सोचो और विचारो सब सन्देह नष्ट होजायगा। बुद्धिमानों के लिये इतना ही पर्याप्त है।

ओम् शम्।

अदृष्ट चित चोर

(रचयिता श्रीयुत पं० भगवतदयालु जी त्रिपाठी 'हंस')

सूर्य-सुता-तीर ब्रज-मध्य न चराते गौवें, वृन्दावन-वन में न बाँसुरी बजाते हो।
सखि-सखा-राधा-साथ निज-रास-भूमि पर, भक्ति-प्रेम-मय, रास-साज न सजाते हो॥
रमणीय द्वारिका में रानी-पट-रानी-युत, छटा-दिखलाते हुये भी-न दिखलाते हो।
'हंस' अब जाना तुम्हें, चोर पहिचाना श्याम! चित में छिपे हो तुम्हीं चित को चुराते हो॥

मनुष्य के विचारने योग्य

अद्भुत ज्ञान की बातें

गतांक से आगे

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु विशोको विजिघत्सो पिपासः सत्य कामः सत्यं संकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम।
कोनो मह्या दितयो पुनर्दात पितरं च दृशयेयं मातरंच॥

हम किस का नाम पवित्र जानें, कौन हमको माता पिता का मुख दिखलाता है।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम।

हम अग्नि परमात्मा का नाम पवित्र जानें। जो हमको आनन्द से पृथिवी में माता पिता का दर्शन करता है।

ऋग्वेद के इस मन्त्र में यज्ञ यूप से बन्धे हुवे रोहित की प्रार्थना अथवा पुनर्जन्म का वृत्तान्त है। लड़के की जन्मते ही स्तन पान करने में तुरन्त ही प्रवृत्ति होना और तीव्र स्मृति होना और मृत्यु का भय होना इस बात को सिद्ध करते हैं कि पूर्व जन्म में उसे खाने पीने का अभ्यास रहा है, मरने का अनुभव किया हुवा है। इसी कारण से शेर को देखते ही गौ घबड़ा जाती है, बिल्ली को देखते ही छोटी चूही भगती है। यह मृत्यु का भय देख देखके नहीं बैठता स्वभाविक ही बढता है।

जैसे किसी पशु को किसी मकान में मार पीट द्वारा दो चार दिन दुःख देकर उसे मुक्त किया गया हो और फिर बहुत पशुवों के साथ में मिला कर उसे उस मकान में पुनः लाया जावे तो और सदतो पशु सानन्द उस मकान में प्रवेश कर जायगे पर वह पशु जिसमें उसने दुःख अनुभव किया है नहीं प्रवेश करेगा। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य जो मौत से डरता है वह पहले भी मर चुका है और मौत के दुःखको अनुभव कर चुका है। योग भाष्य में जैगीसव्य मुनि को अपने दश महा कल्पों के जन्मों का ज्ञान हुवा। अकाट्य भगवान् ने पूछा कि तैंने इनमें क्या अनुभव किया? उसने उत्तर दिया कि दुःख ही अनुभव किया। ऐसे ही बहुत से ऋषियों ने अपने दूसरे जन्मों का वृत्तान्त कहा। अभी भी ऐसे बहुत से मनुष्य उत्पन्न होते हैं जिन्होंने अपने दूसरे जन्मों के वृत्तान्त और निशान बताये। यूनान के फीसा गोरस ने अपने चेलों को कहा कि मैं पहले जन्म में फौज में सिपाही था। अमुक पर्वत की कन्दिरा में मेरे हथियार रक्खे हैं। देखा तो उसी प्रकार वहां ही मिले। और भी कई बातें बतलाई। मौलाना रूम ने कहा मैंने कई जन्म धारण किये। ज्ञान खाना नवाब कहता है।

कबहुंक खग मृग मीन, कबहुं मरकट तन धरके ।
कबहुंक सुर नर असुर नाग मैं आकृति करके ॥
नटवत लख चौरासी, [illegible]
हे त्रिभुवन के नाथ, रीझ कर कछु न पायो ॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुक्ति दान मांगू बिहंस ।
जो पै उदास तो कहहु इम, मत धरै नट स्वांग अस ॥

और मतवालों का खयाल है इमाम महदी ईसा, कृष्ण फिर अवतार लेंगे ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन । (कृष्ण)
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ (कृष्ण)
नाना योनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नाना विधाः स्तनाः ॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः ।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः ।
अहो दुःख निमग्नोऽहं न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ।
अशुभक्षय कर्तारं फलमुक्ति प्रदायकम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम् ।
अशुभ क्षय कर्तारं फल मोक्ष प्रदायकम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं सांख्यं योगं समभ्यसे ॥

यह निरुक्त और गर्भोपनिषद् में विस्तार पूर्वक लिखा है । इसका अभिप्राय यह है कि गर्भ में स्थित जीवात्मा को अपने सब जन्मों का ज्ञान होता है । वह कहता है मैंने नाना योनियां देखीं, नाना प्रकार के स्तन पिये, मैं बहुत बार जन्मा और मरा, कुटुम्ब के लिये मैंने शुभाशुभ कर्म किये । वह अपने अपने कर्मों के अनुसार और और योनियों को चले गये मैं अकेला ही अपने शुभाशुभ फल भोगने के लिये दुःख में पड़ा हूं । यहां से अपने छूटने का उपाय नहीं देखता हूं । यदि हे परमेश्वर ! अबकी मैं किसी तरह से इस गर्भवास के दुःख से छूट जाऊं तो तुम्हारा ही भजन करूंगा और पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करूंगा । ऐसे परमेश्वर से तीन वचन भरता है तब परमात्मा उसकी तीन गांठ खोलते हैं । तब स्त्री के तीव्र पीड़ा ऐसी होती है कि वह धातु की भांति तप जाती है और आंखों में से आंसू [illegible] आता । और बच्चा पैदा हो जाता है । वहां सूक्ष्म वायु होती है और यहां स्थूल वायु के लगते ही बाहर आकर अपने कौल करार को भूल जाता है और रहां रहां करके रोता है । जब बड़ा होता है, सुरत संभालता है सत्संग और करता है और शास्त्र द्वारा अपनी गर्भ में की हुई प्रतिज्ञा को याद करके परमेश्वर का भजन करता है तब जन्म मरण से छूटकर मुक्त हो जाता है । इन प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध होता है कि जीव [illegible] शुभाशुभ कर्म करता हुआ और परमेश्वर की व्यवस्था [illegible] भोगता हुआ और कर्मों के अनुसार शुभाशुभ योनियों में शरीर धारण करता हुआ चला आता है । अब यह मनुष्य शरीर में मोक्ष के दरवाजे पर आगया है । यहां आकर चूक गया तो फिर लख चौरासी योनियों में चला जायगा । फिर पता नहीं मनुष्य शरीर कब [illegible] होकर परमेश्वर का भजन और परोपकार करना चाहिये जिससे जन्म मरण से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हो जाय । [illegible]

[illegible]

तब उसने महात्मा के वचन को भी [illegible] मान
भिन्न [illegible] भी छोड़ दिया और भटक
भटक कर मर गया। अतएव [illegible], प्रमाद,
कुटुम्ब की आसक्ति, विषय वासना की [illegible] को
छोड़ कर सावधानी से परमात्मा का भजन परोप-
[illegible]

[illegible] जन्मों में किये हुये शुभाशुभ बहुत
से [illegible] इकट्ठे हो जाते हैं उनको संचित
[illegible]

[illegible]

और कह देना कि मैं राजा [illegible]
धर्म है कि राजा [illegible]
इसी [illegible] नहीं

लेता था। उसकी यह ख्याति सब शहर में प्रख्यात हो गई और राजा तक भी पहुंच गई। राजा ने अपने मुसाहियों को कहा कि चलो ऐसे राज भक्त को तो देखना चाहिये। राजा वहां आये और उसको कहा कि तू जो चाहे सो मांगले तैंने निष्काम कर्म किया है मैं इससे बड़ा प्रसन्न हुवा हूं। तब वह हाथ जोड़ कर उनके चरणों में गिर पड़ा और कहा निष्काम कर्मों के द्वारा आप मुझ पर प्रसन्न हो गये और दर्शन दिया तो अवश्यमेव निष्काम कर्मों के द्वारा सारे विश्व का स्वामी जो परमात्मा है वह भी दर्शन देगा। यह मेरे अब निश्चय हो गया है। मैं उसकी प्राप्ति के लिये निष्काम कर्म करूंगा। वह ऐसे ही करने लग गया जैसे दिल्ली के मेले में महात्मा नानक जी ने प्यासों को पानी पिलाया वैसे ही प्यासों को पानी पिलाने लग गया। मांग करके या मजदूरी करके जो कुछ प्राप्त होता उसमें से भूखों को भोजन देता। रस्तों में से कांटों को, रोड़ा कंकरों को अलग कर देता कि किसी के पैर में न लगें। आम, नारंगी आदि के छिलकों को जो चूस करके लोग रस्तों में डाल जाते उनको उठा करके अलग डालता। इसी तरह के परोपकार रूपी निष्काम कर्मों को करता रहता। सब के दुःख दूर करने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता। इस तरह के निष्काम कर्म करने से उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और परमात्मा ने उसको दर्शन दिये। जिस कर्म के करने से बहुत मनुष्यों तथा जीवों को सुख होय वह पुण्य और जिस कर्म से बहुत जीवों को दुःख होय और थोड़ों को सुख वह पाप समझना चाहिये। इस विषय में निरुक्त अध्याय १३ खण्ड १६ में लिखा है:-

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनि सहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नाना विधस्तना।
मातरो विविधा दृष्टा पितरः सुहृदस्तथा॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जंतुश्चैव समन्वितः।
सुरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढो अभिनिवेशः॥

युक्ति से भी यही सिद्ध है कि किसी पदार्थ का नाश नहीं होता। सम्बन्ध और गुण बदलते रहते हैं इसी को पुनर्जन्म कहते हैं।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राण मिह नो धेहि भोगं ज्योक् पश्येम: सूर्य मुच्चरन्तं अनुमते मृणयान: स्वस्ति॥ ऋग्वेद

हे असुनीते परमेश्वर! द्वितीय जन्म में हम सुखी होवें। पुनर्जन्म में चक्षु आदि इन्द्रिय और भोग पदार्थों को ज्योक् (निरन्तर) शक्ति धारण करो। हे अनुमन्त! परमेश्वर!! हमको सुखी करो दूसरे जन्म में सुखी ही होवें यह प्रार्थना आप से करते हैं। दीवा जलता है। संघर्षण करने वाली शक्ति उत्पन्न हो कर परमाणुओं में रगड़ के द्वारा प्रकाश करती हुई परिवर्तन कर देती है। सारा तेलवायु में स्थित हो कर वर्षा द्वारा फिर पृथिवी में आता है। फिर सरसों रूप से उत्पन्न हो कर पुनः तैल बन जाता है। इसी प्रकार से जीवात्मा वायु में स्थित होकर श्रद्धा रूपी पुतला को देवता द्यौ लोक अग्नि में हवन करते हैं जिस अग्निकी आदित्य समिधा है, रश्मि धूम हैं, दिन अर्चि है, चन्द्रमा अंगार है, नक्षत्र विस्फुल्लिंग हैं। उससे सोम राजा उत्पन्न होता है। उस सोम राजा को पर्जन्य अग्नि में हवन करते हैं। उसका वायु समित, अभ्रधूम, विद्युत अर्चि, अशनि अंगार, हिरादुन गर्जित शब्द चिनगारी हैं। उस सोम राजा को देवता पर्जन्य में हवन करते हैं तो उससे वर्ष उत्पन्न होता है। वृष्टि रूप से परिणत उससे

अन्य रूप से परिणत होता है। पृथिवी अग्नि में हवन करते हैं उसका सम्वतसर समिधा, अकाश धूम, रात्रि लाट' दिशा अंगार, अवान्तर दिशा चिंगारी। उस अग्नि में देवता वर्ष को हवन करने हैं उससे अन्न होता है। उस अन्न को पुरुष रूपी अग्नि में हवन करते हैं जिसकी वाग् लकड़ी है, प्राण धूम है, जिह्वा अर्चि है, चक्षु अंगार है, श्रोत्र विस्फुलिंग है। उस अग्नि में देवता अन्न को हवन करते हैं। उस आहुति से रेत उत्पन्न होता है। उस रेत को देवता योषा रूप अग्नि में हवन करते हैं। उस का उपस्थ समित है, संकेत करना धूम है, योनि अर्चि है, अन्तःकरण अंगार, अभिनन्दा विस्फुलिंग है। उससे गर्भ उत्पन्न होता है। इस प्रकार से पांचवीं आहुति में जल पुरुष रूप से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उत्पन्न हुवा यावदायुष जीता है। उस प्रेत को अग्नि में जलाते हैं वहां अग्नि अग्नि है, समित समित है, धूम धूम है, लाट लाट है, अंगार अंगार है, चिंगारी चिंगारी है। पंचाग्नि द्वारा जीव का जन्म मरण निरूपण करने से वैराग्य उत्पन्न होता है। जो मनुष्य वन में श्रद्धा और तप द्वारा उपासना करते हैं वे अर्चि के समान होते हैं। अर्चि से दिनके अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। उससे षटमास उत्तरायण, उससे मास, मास से सम्वतसर, सम्वतसर से आदित्य, आदित्य से चन्द्रमा, चन्द्रमा से विद्युत, विद्युत से अमानव पुरुष आकर उनको ब्रह्मलोक में ले जाता है। वहां हमेशा बसता है। यह देवयान पथ है। जो गृहस्थी इष्टा पूर्त्त, श्रौत, स्मार्त, अग्निहोत्रादि इष्ट वापयादि पूर्त्त कर्म करते हैं वह धूम को अर्थात् धूवां के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्ण पक्ष, कृष्णपक्ष से दक्षिणायन, दक्षिणायन से पितरों को प्राप्त होता है। उससे चन्द्रमा, चन्द्रमा से पृथिवी, पृथिवी से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से गर्भ होता है। जो यहां रमणीय चरण पुण्य कर्म करने वाले हैं वह ब्राह्मण क्षत्रि आदि पुण्य योनियों को प्राप्त होते हैं। जो यहां कपूय चरण कुत्सित पाप करने वाले हैं वह कपूय कुत्सित श्वान चाण्डाल की पाप योनि को प्राप्त होते हैं। कभी स्त्री, कभी माता, कभी माता कभी स्त्री, कभी पुत्र कभी पिता, कभी पिता कभी पुत्र। बहुतेरे तेली के बैल की तरह चक्कर लगाते हैं। हजारों ही वर्ष व्यतीत हो जाते हैं वहां के वहां ही रहते हैं और शरीर बदलते रहते हैं। ऐसे ही कभी घर में चूहा, कुत्ता, मनुष्य, बैल आदि आसक्ति से बनते रहते हैं। दूसरे घटि यन्त्र की तरह ऊपर नीचे जाते आते रहते हैं। यहां से यथादि पुण्य कर्म करके स्वर्ग को जाते हैं। वहां से 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति''

पुण्य क्षीण हो जाने पर फिर कर्म करने के लिये यहां आते हैं। इस प्रकार गतागत में लगे रहते हैं। तीसरे उपासना द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और वहां ३६००० हजार बार प्रलय और उत्पत्ति होती है। इतने समय तक रह कर पुनः संसार में आते हैं।

आ ब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

चौथे इन सब बातों को ब्रह्म रूपी अधिष्ठान में कल्पित और झूठी समझ कर जो केवल एक ब्रह्म के साक्षात् रूपी ज्ञान को लाभ करते हैं वे आवागमन से छूट कर सर्वदा के लिये ब्रह्मरूप

को प्राप्त होते हैं। उनके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। वह यहां ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"।

अपूर्ण

प्रार्थना

(रचयिता ब्रह्मचारी अमरसिंह (सूरदास) आश्रम रेवाड़ी)

आज मिल बैठे हैं हम सब प्रेम के दरबार में ॥

नहीं बनें फल हेतु हम कर्तव्य तत्पर हों सदा।
सन्मार्ग पर आरूढ़ होना दें सिखा संसार में ॥ १ ॥

समझें जो तत्व यथार्थ है तज कर वितण्डा जल्प को।
कर वाद से निर्णय न मन को जानें दें कुविचार में ॥ २ ॥

हों भाव महान् उदार और गंभीर हम सबके विभो!
निज ध्येय पर अविचल रहें हृदयेश! कष्ट अपार में ॥ ३ ॥

व्यापे अनवरत विश्व में शुभ शान्ति हे सर्वात्मन्!
रत रहें हे ज्योति निष्किय, सतत पर उपकार में ॥ ४ ॥

वह गर्व दो जिससे कि तुमको अपना आपा कह सकें।
दिव्य नेत्र हमर हों खुले पर आपके अधिकार में ॥ ५ ॥

आशीर्वाद दो ऐसा अब स्थित प्रज्ञ हों हम सब प्रभो!
जीवन बितायें सकल हम अखिलेश! तुमरे प्यार में ॥ ६ ॥

मृत्यु क्या चीज है

[ले०-महात्मा राम 'आत्म']

राजा धृतराष्ट्र जी ने महात्मा सन्त सुजात जी से पूछा कि हे महाराज! आप कहते हैं कि मृत्यु कोई चीज नहीं है। यदि मृत्यु नहीं होती तो देवता भी अमृत्यु होने के लिये ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन नहीं करते परन्तु मेरी समझ में तो देवता, दैत्य और मनुष्य सभी इस भयानक मृत्यु से बचने का प्रयत्न करते हैं। सो हे भगवन! मृत्यु तथा अमृत्यु इन दोनों पक्षों में कौनसी बात सत्य है यह आप मुझे ठीक २ कहें।

सन्त सुजात जी कहते हैं-हे राजन! जिस ब्रह्मचर्य कर्म से मृत्यु नहीं होती है अथवा मृत्यु स्वरूप से है वा नहीं है, इस विषय में जो तुमने हमसे पूछा है सो तुमको हम इसका उत्तर देते हैं सुनो। हे राजन! मृत्यु और अमृत्यु ये दोनों अवस्था भेद से एक ही पुरुष में रहते हैं, मोह से मृत्यु होती है यह कवियों का सम्मत है, और हम तो प्रमाद को ही मृत्यु कहते हैं, और अप्रमाद को अमृत्यु कहते हैं। प्रमाद से ही असुर लोग मृत्यु को प्राप्त होते हैं और प्रमाद से रहित हो कर ज्ञान को प्राप्त हो कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं, मृत्यु किसी को व्याघ्रादि के समान पकड़ कर नहीं खाती है क्योंकि मृत्यु का रूप तो किसी के देखने में आता नहीं है, जब मृत्यु का रूप ही नहीं दीखता है तब मृत्यु के होने में भी क्या प्रमाण है। जिनका आत्मा सदा योग तथा ब्रह्मचर्य में लगा रहता है ऐसे योगी पुरुषों की मृत्यु कभी नहीं होती है। कुछ मूढ़ पुरुष कहते हैं कि यमराज ही मृत्यु हैं वह पितृलोक में रहते हुए सर्व को शिक्षा देते हैं शुभ कर्म करने वालों को कल्याण रूप हैं और अशुभ कर्म करने वालों को अकल्याण रूप हैं। परन्तु यह भी भ्रान्ति ही है सर्प को दण्ड समझना व दण्ड को सर्प समझना इसी के समान मूढ़ पुरुष यमराज को मृत्यु मानते हैं। और वह मूढ़ पुरुष यह भी कहते हैं कि यमराज की ही आज्ञा से क्रोध तथा अज्ञान और लोभ रूप मृत्यु नरों के नाश करने के लिये निकली है। इसी कारण मनुष्य अहंकार के आधीन हो कर कुमार्ग में चलते हैं। और इसी कारण वह अज्ञानी लोग अपने आत्मा को नहीं जान कर अज्ञान से मोहित हो यमराज रूप मृत्यु के वशीभूत हो यमराज के लोक में जाते हैं। वहां से कालान्तर में फिर यहां आते हैं फिर नरक में जाते हैं। प्राणियों के मरने के पीछे उनकी इन्द्रियां तथा उन उन इन्द्रियों के देवता भी वहीं जाते हैं। इसी कारण मरण अवस्था को लोग मृत्यु कहते हैं। जब उनके पुण्यों का उदय होता है तब स्वर्गादिकों में जाते हैं और पुण्यों के क्षय होने पर उन को स्वर्ग से नीचे गिरा दिया जाता है। उस समय उनको बड़ा दुःख होता है। इस प्रकार यह जीव

भोगों की तृष्णा में बन्ध जाने के कारण मृत्यु को नहीं तर सकते। ब्रह्म की प्राप्ति के लिये अष्टांग योग नहीं करने से फिर भोगों में प्रवृत्त हो जाता है। शब्द, स्पर्शादि मिथ्या विषयों में जो इस पुरुष की नित्य प्रवृत्ति रहती है वही प्रवृत्ति इन्द्रियों को महामोह कराती है। इसी कारण मिथ्याभूत विषयों के योग से अभिभव होकर यह अन्तरात्मा सब ओर से विषयों का सेवन करने लगता है। इस कारण शब्द, स्पर्शादि विषयों का स्मरण मनुष्य का पहले नाश करता है, इसके पीछे काम, फिर क्रोध नाश करता है। परन्तु ये सब अजितेन्द्रिय, अज्ञानियों का ही नाश करते हैं। जितेन्द्रिय धीर ज्ञानवान् पुरुष तो अपने प्रयत्न से मृत्यु को जीत लेते हैं, इसलिये मृत्यु को जीतने की इच्छा वाला पुरुष अपने मन में आने वाली कामनाओं का नाश करे। जो कोई कामना होवे तो उसका निरादर करके रोक देवे इस प्रकार जो विद्वान् इच्छाओं का नाश कर देता है उसको अज्ञान रूप मृत्यु यमराज के समान नहीं मार सका निष्काम पुरुष को मृत्यु नहीं खाती है। जो पुरुष कामना के अनुसार चलता है उसका उन कामनाओं से विनाश हो जाता है, यह कामना ही प्राणियों को अज्ञान रूप नरक दिखाई देता है, स्त्री सुखादिकों की इच्छा वाला पुरुष अन्धकार युक्त विषय स्थल में दौड़ने वाले के समान महा विपत्ति में पड़ जाता है। जो पुरुष काम से व्यथित चित्त नहीं है उसको तृण-मय व्याघ्र के समान मृत्यु क्या कर सकेगी, इसलिये हे राजन्! इस कामनामय अज्ञान के जीवन को नाश करके स्त्री आदिकों के सुख को कुछ भी न मान कर उसका स्मरण भी न करे। हे राजन्! क्रोध, मोह, लोभ युक्त जो तुम्हारा जीव तुम्हारे शरीर के भीतर है वही तुम्हारी मृत्यु है इस प्रकार जो मृत्यु को जानता है वह पुरुष मृत्यु से नहीं डरता है।

क्योंकि जैसे मृत्यु को प्राप्त होकर देह मरता है वैसे ज्ञानी को प्राप्त हो कर मृत्यु भी मर जाता है, इसलिये ज्ञान प्राप्त करने का ही यत्न करना चाहिये।

मृत्यु बिभेति किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

अरे हे मूढ़ पुरुष! तू मृत्यु से क्यों डरता है क्या तेरे डरने से तुझे यमराज छोड़ देगा किन्तु नहीं छोड़ेगा क्योंकि जिसका जन्म होता है उसका मरण भी अवश्य होता है, और जिसका जन्म नहीं होता उसको यमराज भी नहीं मार सका। अतः तुमको मृत्यु से बचने के लिये अजन्मा होने का यत्न करना चाहिये। जिस मनुष्य की बुद्धि क्रोध लोभ और मोह से युक्त होकर विषय भोगों में दौड़ती है वह अजित आत्मा ही अपने विनाश का कारण है।

'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः रात्मैव रिपुरात्मनः'।

मन तथा इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष आप ही अपना हितैषी बान्धव है और अजितेन्द्रिय पुरुष आप ही अपना शत्रु है। सारांश यह है कि यह जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपना आत्मा है, इस आत्मा का अज्ञान ही यमराज नाम से प्रसिद्ध है। इस अज्ञान के वशीभूत हो कर यह जीव अनेक प्रकार के बन्धनों में बन्धा हुआ दुःख भोगता है, इस अज्ञान रूप मृत्यु को जीतने वाला केवल आत्मज्ञान ही है अन्य कोई उपाय नहीं है।

धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे सनत्कुमार! उपासना युक्त अश्वमेधादि यज्ञों के द्वारा द्विजातीय लोग जिन महात्मा सनातन लोकों को प्राप्त होते

हैं वह लोक उन पुरुषात्माओं को मोक्ष देने वाले होते हैं ऐसा वेद में बतलाया है तो हमको वही कर्म क्यों नहीं करने चाहियें।

सनत्कुमार ने कहा कि हे राजन्! तुम जैसा कहते हो, इस प्रकार अविद्वान् कर्म मार्ग का अवलम्बन करने वाला जीव क्रम क्रम से मुक्ति पद पर पहुंचता है तथा चारों वेद भी सामान्य रीति से भोग और मोक्ष के प्रयोजन को कहते हैं। परमात्मा कहिये आत्मा से भिन्न रूप देह को आत्मा रूप मानने वाला जीवात्मा यदि कामना से रहित हो जाता है तब वह निर्गुण ब्रह्मात्म भाव को पा जाता है, और यदि वह जीवात्मा कामना रहित (निष्काम) नहीं हुआ है तो वह कर्म उपासना वाला देवयान मार्ग से जाता हुआ सब मार्गों को लांघ कर ब्रह्म लोक में पहुंच कर परब्रह्म को प्राप्त होता है। जो पुरुष ब्रह्मलोक की प्राप्ति को ही परमसुख मानते हैं तथा इसी को परम पुरुषार्थ रूप मानते हैं वह विषयान्ध अज्ञानी इन्हीं ब्रह्मलोक आदिकों की प्राप्ति कराने वाले कर्मों में लगे रहते हैं। परन्तु ज्ञानी पुरुष उन लोकों में अविद्यादि दोषों की छाया को देख कर उन लोकों से विरक्त रहते हैं वह केवल परमात्मा को जान कर परमात्म स्वरूप ही हो जाते हैं 'ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति'। जो ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म रूप ही हो जाता है, बृहदारण्यक उपनिषत् में कहा कि:-

'तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मुपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते एवमेवेदं शरीरं विहन्यविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वेति तु कामयमानो योऽकामो निष्काम आप्त "कामः स्यान्नतस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्त इति'।

जैसे सुनार सोने का थोड़ा २ भाग लेकर दूसरी पहले से अन्य ही प्रकार की रचना करता है, तैसे ही यह आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरा नया ही शरीर रचता है, पितृलोक के उपभोग के योग्य, गन्धर्व लोक के उपभोग के योग्य देवलोक के उपभोग के योग्य, प्रजापति लोक के उपभोग के योग्य, ब्रह्मलोक के उपभोग के योग्य अथवा किसी अन्य भूतों के उपभोग के योग्य, कर्म के अनुसार और शास्त्र के श्रवण से पाये हुए ज्ञान के अनुसार दूसरा शरीर बनाता है। परन्तु जो जीवात्मा कामना से रहित होता है वह केवल आत्मा की ही कामना वाला होता है और उसीको आप्तकाम भी कहते हैं। जिसकी सर्व कामनायें पूर्ण अर्थात् समाप्त हो गई हैं उसको आप्तकाम वा पूर्ण काम कहते हैं। उस पूर्ण काम आत्मा की वाणी आदि सर्व इन्द्रियां तथा प्राण शरीर के त्याग काल में बाहर निकल कर अन्यत्र नहीं जाते हैं किन्तु यहीं शरीर के अन्दर ही अपने २ कारण में लीन हो जाते हैं। और आत्मा तो पहले ही परमात्मा रूप था वह उपाधियों के पृथक् होने पर स्वयं प्रकाश स्वरूप पर ब्रह्म में एक ही भाव को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि आत्मा परमात्मा दोनों एक ही वस्तु के नाम हैं।

धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे विद्वन्! उस जन्मादि रहित सच्चिदानन्द अद्वितीय परम पुरुष को संसार में कौन भेजता है? यदि कहो कि वह अपने आप ही आकाशादि भूत और इस भौतिक प्रपञ्च को रच कर उसमें अनुप्रविष्ट और संसारी हो गया है। तो यह प्रश्न है कि उस परमेश्वर का इस प्रकार योनि जन्म ग्रहण करने का क्या प्रयोजन था, जो अनेक प्रकार की विषमावस्था को प्राप्त हो कर

कहीं सुखी, कहीं दुःखी और कहीं निन्द कहीं स्तुति का पात्र बन रहा है। जो सदा अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता है तथा जो सदा ही सम भाव में स्थित रहता है उसने संसार में प्रवेश करके सैकड़ों और संहस्रों अनर्थों को अपने ऊपर क्यों ले लिया है। सन्त सुजात जी कहते हैं कि हे राजन्!

'अनादि योगेन भवंति नित्याः'।

अनादि संयोग वाली माया के द्वारा यह परमात्मा इस जगत की रचना करता है। प्रकृति और पुरुष यह दोनों अनादि है।

'प्रकृति पुरुषं चैव विद्धिषनादी उभावपि'।

तथा च—

अनादि मायया सुप्तोयदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्न मद्वैतं बुध्यते तदा'॥

अनादि काल का माया रूप निद्रा में सोया हुआ यह जीवात्मा जब अपने आत्मा के ज्ञान से जागृत हो जायगा तब जन्मादि रहित तथा माया रूप निद्रा और स्वप्न रहित अद्वितीय आत्मा को जानेगा। इस माया के सम्बन्ध से ही उस परमात्मा में श्रुति ने त्रिगुण पना कथन किया है। 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति'। वह परमात्मा देव ऐसी इच्छा करता भया कि मैं बहुत रूप होय के प्रकट होऊं। 'अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां' यह माया 'अज' उत्पत्ति रहित है और एक है 'लोहित' रजोगुण 'शुक्ल' सत्त्वगुण 'कृष्ण' तमोगुण, इन तीन गुणों वाली है 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते'। इस त्रिगुणात्मक माया के द्वारा परमेश्वर अनेक रूप धारण करता है।

'अनृतेन हि प्रत्यूढः'। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः'॥

जिनका ज्ञान अज्ञान से ढक रहा है यह जीव उसी कारण मोह में पड़े हैं। 'यत्साक्षादपरोक्षात्ब्रह्म'। जो साक्षात् अपरोक्षब्रह्म है 'अयमात्मा सर्वान्तरः'। यह आत्मा सर्वान्तर है। अर्थात् सबके घट घट में विराजमान है तब भी इस आत्मा को जीव नहीं जानते हैं। यह सब उस मायावी परमात्मा की माया का खेल है। इसलिये जीव से आदि लेकर यह सभी प्रपंच एक अद्वितीय आत्मा के मायिक आविर्भाव के सिवा और कुछ नहीं है। अपनी माया के द्वारा एक अद्वितीय परमात्मा का बहुत रूप होना न असम्भव है और न अनुपपन्न है। तात्पर्य यह है कि वह परमात्मा कारण रूप से परमेश्वर और कार्य रूप से जीव है। वह परमात्मा माया के द्वारा अपने रचे हुए जीवों की इच्छा, चेष्टा आदि के द्वारा उनकी प्रेरणा करता है अर्थात् उन जीवों को शुभाशुभ कर्मों के फल भुगाता है। परन्तु परमार्थ में अद्वैत भाव होने से न कोई किसी को कहीं नियुक्त करता है और न कोई किसी को संसारी करता है। जब एक के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तब कौन किसको प्रेरणा करेगा तथा कौन किसको संसारी करैगा। 'ज्ञान स्वरूप मत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः'। पराशर ऋषि ने कहा है कि [आत्मा जो ज्ञान स्वरूप है वह अत्यन्त निर्मल है उसमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं है।

'दोषो महानत्र विभेद योगे ह्यनादि योगेन भवन्ति नित्याः।
तथास्य नाधिक्य मुपैति किञ्चिदनादि योगेन भवन्ति पुंसः'

महाभारत उद्योग पर्व अ० ४२-२०।

सनत्सुजात जी कहते हैं कि, यदि जीव और ईश्वर का पहले तो भेद रखा जाय और फिर पीछे से उन दोनों की एकता हो जाती है, ऐसा माना जाय तो बड़ा भारी दोष आता है। क्योंकि

एक वस्तु दूसरी वस्तु बन जाय यह बात असम्भव है। इसलिये जीवात्मा का वास्तविक भेद नहीं है, किन्तु अनादि काल के भोग्य वर्ग अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के साथ सम्बन्ध होने से नित्य परमात्मा स्वयं ही घटाकाश और जलचन्द्र की समान अनेकों जीव रूप से उत्पन्न होता है। जैसे आकाश एक ही है, परन्तु घट मठादि उपाधियों के सम्बन्ध से अनेक सा प्रतीत होता है।

'घट संवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः॥

घट जितने अवकाश में स्थित है उस आकाश को घटाकाश कहते हैं। घट को उठा कर एक स्थान से जब दूसरे स्थान में ले जाया जाता है तब घटाकाश में भी जाने आने की क्रिया प्रतीति होती है, परन्तु वास्तव में घटाकाश कहीं भी न जाता है और न आता है, वह तो वहां का वहीं रहता है किन्तु घट रूप उपाधि का ही जाना आना होता है। तैसे ही स्थूल सूक्ष्म शरीरादिकों की उपाधि के सम्बन्ध से जीवात्मा में जन्म मरण गति अगति लोक परलोक में जाना इत्यादि व्यवहार होता है।

एक एवतु भूतात्मा भूते भूते प्रकाशते।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्र वत्॥

जैसे एक ही चन्द्रमा जल से भरे हुए पात्रों में अनेक रूपों वाला सा प्रतीत होता है तथा जल के हिलन चलनादि व्यवहार से हिलता चलतासा भी प्रतीत होता है परन्तु जो मुख्य बिम्ब रूप चन्द्रमा है वह एक ही है और उसमें कोई हिलन चलनादि क्रिया भी नहीं होती है। तैसे एक ही परमात्मादेव सब प्राणियों का आत्मा रूप होकर सब के अन्दर स्थित हो कर सब भूत प्राणियों को प्रकाशता है।

'यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्
यो भित्वा बहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भेद रूपो देवः
क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा' ॥

जैसे ज्योति स्वरूप सूर्यनारायण एक है, परन्तु जुदे जुदे पात्रों के जल में प्रतिबिम्ब रूप से अनेक प्रकार से भासते हैं। तैसे ही अजन्मा और असंग हुआ भी परमात्मा अनादि योग वाली माया कृत शरीरों की उपाधियों के कारण एक होने पर भी अनेक सा प्रतीत होता है। अनादिकाल के अज्ञान के कारण से जीवात्मा को शरीरों का संबन्ध होता है। और यह जो बड़े भारी विस्तार वाला जगत् दिखाई दे रहा है यह भी नित्य ही निर्विकार रूप है क्योंकि भगवान् जो षट् ऐश्वर्य सम्पन्न हैं यह जगत् उसी का विवर्त रूप है। जैसे सुवर्ण के कार्य जो कटक कुण्डलादिक है वह कोई सुवर्ण से पृथक् सत्ता वाले नहीं हैं किन्तु सुवर्ण रूप ही हैं। तैसे उस चैतन्य परमात्मा का कार्य रूप यह जगत् भी उस परमात्मा की सत्ता से भिन्न सत्ता वाला नहीं है किन्तु परमात्मा रूप ही है। इसी अर्थ को वेद की श्रुतियां भी कहती हैं। 'इदं सर्वं यदयमात्मा' अर्थात् यह जो कुछ जगत् दीख रहा है यह सर्व परमात्म स्वरूप ही है। 'ब्रह्म वेदं विश्वं' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। यह सर्व जगत् निश्चय करके ब्रह्म स्वरूप ही है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा अपनी माया के द्वारा इस जगत् की रचना करता है परन्तु जैसे स्वप्न के अनेक पदार्थ बन हुए ही प्रतीत होते हैं उसी प्रकार यह जगत् परमात्मा में बन हुआ ही प्रतीत होता है वास्तव में नहीं है।

अपूर्ण

कीर्तन निष्ठा

[ले०—म० कृष्णानन्दजी सरस्वती]

चैत्र का महीना था, वसन्त का आरम्भ था। वन की जड़ी बूटी, लताओं और वृक्षों ने अपनी काया पलटनी आरम्भ की हुई थी। नवीन पल्लव बड़े सुन्दर और शोभायमान प्रतीत होते थे। उस सुन्दरता को देख कर दिमाग़ और दिल आनन्द से भरपूर हो जाते थे और क्षणिक समाधि लग जाती थी। वसन्त में समस्त जगत् नवीन वस्त्र धारण करता है फिर हिमालय की तो बात ही क्या है? वह तो प्रकृति के सौन्दर्य का केन्द्र ही है। प्रातःकाल ऋषिकेश की झाड़ी के निकट सहस्र धारा पर एक महात्मा अवधूत वृत्ति से तपस्या कर रहे थे। एक उदार चित्त महाशय वहां जा निकले। महाशय जी के चित्त में श्रद्धा और जिज्ञासा उत्पन्न हुई। चित्त में ख़याल आया कि बहुत सम्भव है यह महात्मा मेरी शंकाओं का निवारण कर सकें। निकट जाकर श्रद्धा से प्रणाम करके महाशय जी वहां जा बैठे। महात्मा जी ने आखें बन्द कर रक्खी थीं और ध्यान परायण थे। आध घण्टे बाद उन्होंने आखें खोलीं। महाशय जी को देख कर वह मुस्करा कर रह गए महाशय जी हाथ जोड़ कर बोले।

महाशय—भगवन्! क्षमा कीजिए मैंने आपके आनन्द में विघ्न डाला है परन्तु मेरे चित्त में बहुत दिन से कुछ शंकाएं थीं जिनके लिए मेरी आत्मा में यह भाव उत्पन्न हुआ कि आप के द्वारा उन शंकाओं की निवृत्ति होना सम्भव है।

अवधूत—कोई बात नहीं, हम और तुम एक ही हैं। तुमको सन्तोष होना हमको ही सन्तोष होना है। संकोच त्याग कर प्रेम पूर्वक सब बातें पूछो, जो कुछ हम जानते हैं बतायेंगे।

म०—महाराज! हमारे सनातनी भाई यह कहते हैं कि कलियुग में केवल "कीर्तन" ही मोक्ष-साधन का उपाय है योग आदि अन्य उपाय इस युग के उपाय नहीं हैं।

अ०—सर्वांशमें तो यह बात ठीक नहीं है हां विशेषांशमें ठीक है।

म०—महाराज यह कैसे है? कृपा करके इसको स्पष्ट करके समझाइए।

अ०—सर्वांश में तो इसलिए ठीक नहीं है कि आत्मा युग के बन्धन में नहीं है। यह काल के अधीन नहीं है। युग की सृष्टि हमने ही की है। यह युग भी सब के लिए कलियुग नहीं है और सत्युग भी सब के लिए सत्युग नहीं है। जो संस्कारी जीव हैं उन पर आज भी कलियुग का

कोई प्रभाव नहीं है। यदि विचार पूर्वक देखो तो मालूम होगा कि युग हमारे ही अधीन है। इस युग को भी हमने ही कलियुग बना रक्खा है और हम ही इसे सत्युग बना सकते हैं। हठ योग, राजयोग और कर्म्म योग अब भी साधन करने योग्य हैं और करने वाले इनकी साधना करते हैं और इनके द्वारा मोक्ष धाम की प्राप्ति लाभ करते हैं। परन्तु यह शक्तिशाली और वीर्यवान पुरुषों का काम है। साधारण मनुष्यों के लिए कीर्तन ही ठीक है। कीर्तन द्वारा सहज ही में चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है और मनुष्य मोक्ष की तरफ अग्रसर होता है।

म०—महाराज क्षमा कीजिए यह बात समझ में नहीं आती कि जिस मोक्ष के लिए ऋषि मुनी योगाभ्यास करके वर्षों समाधि लगाते थे वह मोक्ष केवल नामोच्चारण करने और नृत्य करने से प्राप्त हो जावेगी।

अ०—मोक्ष प्राप्ति के लिए तो योगाभ्यास और कीर्तन दोनों ही पर्याप्त हैं। दोनों साधनों द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता। है योग में भी प्राणों का निरोध करना होता है और ध्यान लगाना होता है। इसी प्रकार कीर्तन में भी भगवान के नाम की ध्वनि करने और भगवान के नाम का ध्यान करने से चित्तवृत्ति का निरोध और ध्यान दोनों ही होते हैं। संसार को भूलकर परमात्मा में लय हो जाने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें कुछ सन्देह की बात नहीं है, यह तो साधारण नियम है। तुम अपने चित्त को किसी भी साधन द्वारा उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा में लय कर दो जहां से इसकी उत्पत्ति हुई है वह उसी में समा जावेगा। फिर न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। समस्त खेल इस मनोराम का है। यह ही सारी रचना रचता है जब इस को घेर घार कर इसके केन्द्र में पहुंचा दोगे फिर झगड़ा ख़त्म हो जावेगा। यह आनन्द से निकल कर आनन्दाभास में आनन्द की खोज करता फिरता है और भटक २ कर पछताता रहता है और इसके हाथ कुछ नहीं आता। मोक्ष प्राप्ति के लिए तो केवल इसका ही प्रबन्ध करना होगा और यह कीर्तन द्वारा भी अवश्य हो सकता है।

म०—भगवन! मेरी धृष्टता को क्षमा कीजिए। मैं आप का अमूल्य समय नष्ट कर रहा हूं परन्तु आप जैसे महान पुरुषों के दर्शन भी दुर्लभ हैं। इसलिए चित्त यही चाहता है कि जब तक मेरी शंका निवृत्त न हो जावे मैं आपके चरणों से पृथक् न हूं।

अ० कोई चिन्ता की बात नहीं। जब तक तुम्हारा चित्त चाहे सो पूछते रहो, तुम्हारी शंका निवारण करना भी भजन है। हम में और तुम में भेद ही क्या है, कुछ दिन पहले हम भी तुम्हारी तरह अनेक शंकाएं लिए फिरते थे समय आने पर सब बातें होजाया करती हैं। आज जो पापी है कल वह पुण्यात्मा बनेगा, जो नास्तिक है वह आस्तिक बनेगा, साधारण मनुष्य सन्त बनेगा। क्षुद्र जीव ब्रह्म हो जावेगा। सब की मोक्ष होगी, सब को आनन्द की प्राप्ति होगी। यहां कौन छोटा है और कौन बड़ा है? राजा और रंक में क्या भेद है? यह सब दृष्टि कोन की भिन्नता के कारण भेद भासित होता है। सब एक ही चक्र पर चढ़े हुए हैं। यहां कौन आगे और को न पीछे? न मालूम कितने आगे हो गए और कितने आगे आने वाले हैं। और पीछे समझना, भला और बुरा देखना यह सब अहंकार के खेल हैं। जब

जीव इस अहंकार रूपी ऊंट से नीचे उतर आवेगा तो उसमें समता आजावेगी, वह किसी को तुच्छ नहीं समझेगा। अच्छा निःशंक हो कर प्रश्न करो, तुम तो हमारा आत्मा ही हो, चिन्ता किस बात की ?

म०—महाराज आपके अभिमान रहित और शान्त वचनों से मेरे हृदय को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हो रहा है, मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूं मानो शान्ति के समुद्र में गोते लगा रहा हूं, यह मुझ तुच्छ व्यक्ति पर आपकी अनन्त दया है। आज मुझे कुछ पता चला है कि सन्तों का हृदय कितना विशाल होता है। भगवन् क्षमा कीजिए मैं ऐसे आदमियों को जानता हूं जो बीस २ वर्ष से बराबर कीर्तन कर रहे हैं परन्तु उनकी वृत्ति में कुछ भी अन्तर नहीं आया फिर मोक्ष की तो बात ही क्या है ? हमारे ग्राम में चमार बहुत कीर्तन करते हैं और बड़ी शब्द वाणी गाते हैं परन्तु वही चमार के चमार हैं। इन सब बातों से मैं समझता हूं कि कीर्तन से क्या हो सकता है ? मोक्ष के लिए तो योग ही सर्वोत्तम और एक मात्र उपाय है।

अ०—तुम्हारा अनुभव भी ठीक है परन्तु इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता है। जो कार्य पूर्ण रूप से किया जाता है उसीसे सिद्धि प्राप्त होती है, अधूरे काम का फल भी ऐसा ही होता है। जो बीस २ वर्ष से कीर्तन कर रहे हैं लाभ तो उनको भी पर्याप्त हुआ है यदि वह कीर्तन नष्ट करते तो न मालूम कैसे खोटे कर्मों में पड़ जाते और उनकी क्या दुर्दशा होती ? कीर्तन ने उनकी बड़ी रक्षा की है। रहा मोक्ष का प्रश्न सो उसकी उनको लग्न ही नहीं है। चमारों का जो तुमने जिकर किया उसका भी बहुत महत्व है। चमार जो आज तक हिन्दू बने हुए हैं, उसका मुख्य कारण इनका सत्संग ही है। यदि इन लोगों में सत्संग कीर्तन न होता तो यह कभी के ईसाई, मुसलमान हो जाते। यह क्या कीर्तन की कम महिमा है जो इनको एक हज़ार वर्ष से अपने धर्म्म पर दृढ़ बना रक्खा है ? प्रत्येक योगी की भी मोक्ष नहीं हो जाती। मोक्ष के लिए तो जो जान की बाजी लगानी पड़ती है, इस मार्ग में तो जीते ही मरना होता है, यह तो प्रेम का सौदा है, जिसने शिर दिया उसने शिर पाया और जिसने उसे बचाया वह मारा गया। योगी स्थूल शरीर से अपने चित्त को उठाकर सूक्ष्म में लय कर देता है और सूक्ष्म से कारण में और कारण से आत्मा में लय कर देता है तब उसे मोक्ष प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कीर्तन की बात है। जब कीर्तन श्रद्धा और प्रेम से किया जाता है और भक्त को अपने तन मन की सुधि नहीं रहती और उसके रोम २ से भगवान् के नाम का उच्चारण होने लगता है तब आप ही समाधि लग जाती है और वह भगवान् से मिलकर एक रूप हो जाता है। जिस प्रकार योग में प्राणों का अवरोध होकर समस्त चित्त-वृत्तियों का निरोध होजाता है उसी प्रकार कीर्तन में होता है। इसके उदाहरण ब्रह्मर्षि नारद और श्रीचैतन्य महा प्रभु हैं। मोक्ष की अभिलाषा है तो रात दिन कीर्तन करो, प्यारे से प्रीति जोड़ो, प्रेमी को चैन कहां ? चित्त की समस्त वृत्तियों को प्यारे की याद में लगा दो। यदि सुमरण में चित्त इधर, उधर जाता है तो जोर २ से ध्वनि करने लगो .यदि अब भी चित्त नहीं रुकता है तो खड़े हो कर नृत्य करो और ध्यान सहित इतने नाचो कि बेहोश हो जाओ। तुम्हारे रोम २ और रक्त के अणु २ से भगवान का नाम उच्चारण हो। भगवान् के नाम के सिवाय अन्य सब संकल्पों को समूल नष्ट कर डालो

फिर केवल वह रह जावेगा। और तुम रह जाओगे। कीर्तन बड़ी सरल विधी है इसमें किसी विधी विधान और सिखाने वाले की जरूरत नहीं केवल श्रद्धा भक्ति से करने की बात है।

म०-भगवान आपने कृपा २ कर दिया अब मेरी समझ में आगया। कीर्तन निष्ठा भी पूर्ण निष्ठा है और बड़ी सरल है। आपको कोटिशः धन्यवाद है, आपका जीवन धन्य है और आप से हमारे देश का गौरव है।

प्रार्थना

जग फिर से बैन बजाओ तुझे माखन देंगे ॥ टेक ॥
सारी सखियां हिल मिल आ.
पीछे २ कहनो जावें।
कोई वंशी की तान सुनादे ॥ १ ॥
माधव विरवा पर चढ़ जावें,
ग्वालिन नीचे शोर मचावें।
तू चीर हमारा लादे ॥ २ ॥
किसने बीज प्रेम का बोया,
किसने सखियों का मन मोहा।
वंशीवारे तू सांच बतादे ॥ ३ ॥
तेरी नजीर नहीं इस जगमें,
यमुना आन पड़ी है मग में।
कोई प्रेम की धार बहादे ॥ ४ ॥
परम सुहावना सावन आयो,
सब सखियों का मन हुलसायो।
कोई प्रेम की पींग झुलादे ॥ ५ ॥

२

इक दिन, साहेब बेनु बजाई ॥
सब गोपिन मिल धोखा खाई,
कहैं जसुदा के कन्हाई ॥
कोई जंगल कोइ देवल बतावै,
कोइ द्वारिका जाई ॥
कोई आकाश पाताल बतावै,
कोई गोकुल ठहराई।
जल निर्मल परवाह थकित भे,
पवन रहे ठहराई ॥
सोरह वसुधा इकइस पुरलों,
सब मुर्छित होइ जाई ॥
सात समुद्र जबै घहरानी,
तेतिस कोटि अघानो ॥
तीन लोक तीनों पुर थाके,
इन्द्र उठो अकुलानो।
दस औतार कृष्ण लों थाका,
कुरम बहुत सुख पाई ॥
समुझि न परो तार पारलों,
या धुनि कहतें आई ॥

सेखनाग और राजा बासुक,
बराह मुर्छित होई आई ॥
देव निरंजन आया माया,
इन दुनहुन सिर नाई ॥
कहैं कबीर सत लोक के पुरुष,
शब्द केर सरनाई।
अमी अंक तें कुतुक निकारी,
सकल सृष्टि परछांई ॥

३

जागो बंशी वारे ललना जागो मोरे प्यारे ॥ टेक ॥
रजनी बीति भोर भयो है, घर २ खुले किवारे।
गोपी दही मथत सुनियत हैं कंगना के झनकारे ॥
उठो लाल जी भोर भयो है सुर नर ठाडे द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल जय २ शब्द उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीनी गौवन के रखवारे ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर शरण आयां को तारे ॥

४

भोर भई बाजी मधुर मुरलिया,
कैसे धरे जीया धीर ॥ टेक ॥
मधुबन बाजी वृन्दावन बाजी,
तट यमुना के तीर ॥
बैठ कदम पर बंशी बजावे,
स्थिर भयो यमुना नीर ॥
दर्द न जाने पीर ना पिछाने,
श्याम बड़ो बे पीर ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
आखिर जात अहीर ॥

५

नन्द नन्दन वृन्दावन चन्द ॥ टेक ॥
यह कहे जननी जगावत लालन।
जागो मोरे आनन्द कन्द ॥ १ ॥
आलस भरे उठे मनमोहन।
चलत चाल ठुमकत अति मन्द ॥ २ ॥
पोंछ बदन अंचल सौं यशुमति।
उर लगाय उपज्यो आनन्द ॥ ३ ॥
सब वृज युवति आई देखन।
दर्शन होत मिट्यो दुःख द्वन्द ॥ ४ ॥
वृजपति श्री गोपाल परिपूर्ण।
जाको यश गावत श्रुति छन्द ॥ ५ ॥

६

जागिये वृजराज कुंवर कमल कोप फूले ॥ टेक ॥
कुमुद वृन्द सकुच भये भृंग लता फूले ॥ १ ॥
तमचर खग शोर सुन्यो बोलत बन राई।
रांभत गो क्षीर देत बछरन हित धाई ॥ २ ॥
विधु मलीन रवि प्रकाश गावत वृज नारी।
सूर श्याम प्रात उठे कम्बुज करधारी ॥ ३ ॥

७

मोहे लग गयो बाण सुरंगी हो ॥ टेक ॥
धन सतगुरु उपदेश दियो है,
हो गयो चित्त भिरंगी हो ॥
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया,
घायल पांचों संगी हो ॥
घायल की गति घायल जाने,
क्या जाने जात पतंगी हो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
निशिदिन प्रेम उमंगी हो ॥

८

बन्दे करले आप निबेरा ॥ टेक ॥
आप चेत लखु आप ठौर कर मूये कहां घर तेरा ॥
यही अवसर नहीं चेत्यो प्राणी अन्त कोई नहीं तेरा ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो कठिन कालका घेरा ॥

नन्द कन्द ॥ १ ॥
।
अति मन्द ॥ २ ॥
ति ।
ो आनन्द ॥ ३ ॥
।
दुःख द्वन्द ॥ ४ ॥
।
श्रुति छन्द ॥ ५ ॥

ोप फूले ॥ टेक ॥
फूले ॥ १ ॥
वन गाई ।
त धाई ॥ २ ॥
कुंज नारी ।
करधारी ॥ ३ ॥

हो ॥ टेक ॥
,
मिरंगी हो ॥
दा ।
संगी हो ॥
ने ।
पतंगी हो ॥
धो ।
उमंगी हो ॥

॥ टेक ।
पे कहां पर लेा ।
त कोई नहीं लेा ।
न कालका लेा ।

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=।
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१।)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें ।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।